शोर बनाम प्रबंधन

नीरज शर्मा *

बच्चों के जीवन की शुरुआत विद्यालय से ही होती है और दुनिया से एक तरह से उनका परिचय बढ़ रहा होता है। बच्चे कक्षा में अपने सहपाठियों से संवाद स्थापित करना बहुत पसंद करते हैं। लेकिन इसे विडंबना ही कहा जाएगा कि अनुशासन के नाम पर बच्चों की इस स्वाभाविक अभिव्यक्ति को नियंत्रित किया जाता है। गुम-सुम बैठे बच्चों की कक्षा को ही अनुशासित माना जाता है और शिक्षक को भी अच्छा तभी माना जाता है जब उसकी कक्षा से शोर ना आ रहा हो। लेकिन बच्चों के विकास के लिए शोर की प्रवृत्ति बहुत ज़रूरी है। अगर बच्चे कक्षा में बातचीत करते हैं तो यह बहुत ही स्वाभाविक-सी चीज़ है। इससे साबित होता है कि बच्चे कक्षा की गतिविधियों में सक्रिय भी हैं और एक बेहतर विकास की ओर अग्रसर हैं।

करोड़ों की आबादी वाले इस दिल्ली शहर में कुकुरमुत्ते की तरह हर गली, कॉलोनी में स्कूल खुले हैं जो अपने आपको श्रेष्ठ साबित करते हुए ऐसे भ्रामक विज्ञापन छापते हैं कि अभिभावक खिंचे चले जाते हैं। सिर्फ विज्ञापन में ही चमक-दमक नहीं होती बल्कि बच्चों की वर्दी, विद्यालय की इमारत का आकर्षक ढाँचा देखने वाले के मन में संपन्नता का बोध कराता है और सब से ऊपर है समाज में विद्यालय की प्रतिष्ठा। पर क्या वाकई विद्यालय बालक का सर्वांगीण विकास कर रहे हैं। बालक के विद्यालयी जीवन को आनंदमयी बनाने में सफ़ल हो रहे हैं। ऐसा लगता तो नहीं, क्यों आज कक्षा से बच्चों का शोर गायब है। शांत कक्षा और गुम-सुम बैठे बच्चे कक्षा और विद्यालय अनुशासन के वाहक माने-जाने लगे हैं। प्रधानाचार्य का औचक निरीक्षण, शांत बैठी कक्षा के विषयी अध्यापक को शाबासी देता है, उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करता है। वहीं अध्यापक को अच्छा और अनुशासित विद्यालय होने का एहसास

* *शिक्षक,* केंद्रीय विद्यालय, रंगपुरी, नयी दिल्ली

कराता है। ऐसे में अगर अभिभावक को विद्यालय परिसर में घूमने का मौका मिल जाए तो वे विद्यालय प्रशासन की प्रशंसा करते हैं। भेड़ें जिस प्रकार एक के पीछे हो जाती हैं वैसे ही अभिभावक सोचते हैं कि फ़लाना विद्यालय उत्तम है। वे लोग साम, दाम, दंड, भेद की नीति अपनाते हैं, बस बालक का उसी विद्यालय में प्रवेश होना चाहिए। मेरी नज़र में तो बच्चे का विद्यालयी जीवन ऐसा होना चाहिए जिसे वह ताउम्र याद रखे। शिक्षकों और विद्यालय में पढ़ने वाले अपने दोस्तों को याद रखे और सबसे अच्छा तो यह हो कि वह विद्यालय के खुशनुमा माहौल को हमेशा याद रखे। बड़ा होकर अपने विद्यालयी जीवन के सुखद अनुभव बाँटे।

आजकल अभिभावक अपने बच्चों को इस तरह से आधुनिक बनाना चाहते हैं कि उनमें भारतीय संस्कार और नैतिकता भले ही न हो लेकिन वे भारत में आधुनिक व्यक्ति बनें उनका सम्मान हो, उन्हें अच्छी नौकरी मिले इत्यादि। पर ऐसी सोच के पीछे बालक के विद्यालयी जीवन का सम्मान खो रहा है।

ऐसा विद्यालयी जीवन किस काम का जो बालक को खुले आकाश में खेलने न दे। लंच के समय में कक्षा से बाहर न जाने दे। लंच के समय में भी बालक अध्यापक से पूछकर ही बाहर जाए यह उचित नहीं जान पड़ता। प्राचार्य को समझना चाहिए कि 40-50 बच्चों वाली कक्षा में बच्चे अगर धीरे-धीरे बोलेंगे तो भी शोर हो सकता है। वह कक्षा ही क्या जिसमें से शोर न आए। शिक्षक किसी बालक को व्यक्तिगत रूप से समझा रहा हो तो दूसरे बालक आपस में बात कर सकते हैं यह जानने और समझने की बात है। बच्चों की आपसी बातचीत व्यर्थ नहीं होती बच्चे आपसी बातचीत के ज़रिए ज़्यादा सीखते हैं। खासकर धीमी गति से सीखने वाले बच्चे तो दोस्तों से बातचीत के ज़रिए ही ज़्यादा सीखते हैं।

बच्चों की आपस की बातचीत शोर का रूप ले सकती है। यह कोई गंभीर अपराध नहीं है। वैसे ऐसा आमतौर पर सरकारी विद्यालयों में नहीं देखा जाता। वहाँ बच्चों को भरपूर मौका होता है जीवन के निजी अनुभव लेने का इसलिए सरकारी विद्यालयों के बालक अंग्रेज़ी में बोलचाल को छोड़कर अन्य विषय में वास्तविक अनुभवों में तपे लाल-सुर्ख होकर निकलते हैं। विद्यालय में पाठ्य विषयों के अलावा पाठ्य सहगामी क्रियाएँ भी होती हैं। ये पाठ्य सहगामी क्रियाएँ भी इस हिदायत के साथ कराई जाती हैं कि क्रियाओं के दौरान शोर न हो। बच्चों को हर अवसर पर दबाया जा रहा है, शोषित किया जा रहा है। बहुत से बच्चे तो शायद इन पाठ्य सहगामी क्रियाओं में भाग ही नहीं लेते। शोर विद्यालयी जीवन का अहम हिस्सा है। इस सत्य को विद्यालय के सभी अधिकारियों, शिक्षकों, कर्मचारियों एवं अभिभावकों को समझना पड़ेगा। डरा धमकाकर बच्चों को कक्षा में बाँधे रखना प्राचार्य के लिए ठीक हो सकता है परंतु एक शिक्षक के लिए सही कदम नहीं है। इस सच्चाई से अध्यापकों को जानते हुए अनजान नहीं बनना चाहिए। विद्यालयी अनुशासन और प्रबंधन के संदर्भ में राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा की रूपरेखा–2005 में सिफ़ारिश की गई है कि विद्यालय में नियम कम से कम होने चाहिए जिनका पालन सहजता से किया जा सके। यदि नियम किसी कारणवश तोड़े गए हैं तो उसके लिए बच्चों को

दंड नहीं दिया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, कक्षा में शोरगुल पर शिक्षक एवं प्रधानाध्यापक हमेशा नाराज़गी दिखाते हैं, लेकिन संभव है कि शोरगुल कक्षा की जीवंतता एवं सक्रियता का प्रमाण हो न कि इनका कि शिक्षक कक्षा को नियंत्रित नहीं कर पा रहे हैं। (राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005, पृष्ठ-99, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली)

बच्चों के लिए सच्ची निष्ठा अध्यापक का स्वाभाविक गुण होना चाहिए। सिर्फ़ वैतनिक बनकर रहना शिक्षक के लिए ठीक नहीं कहा जा सकता। देखा भी जाए तो आज के विद्यार्थियों ने ऐसा क्या कमाया जिस पर अभिभावकों एवं विद्यालय को गर्व होना चाहिए। मोटे तौर पर जो दिखाई देता है, वह है – आँखों पर नज़र का चश्मा, थुलथुला व बेढ़ंगा शरीर, और कमज़ोर हड्डियाँ। वैसे ऐसा निजी विद्यालयों में ज़्यादा दिखाई देता है जहाँ ए.सी. बसें, ए.सी. कक्षाएँ यहाँ तक कि पूरा विद्यालय परिसर ही ए.सी. होता है।

सरकारी विद्यालय इस ए.सी. परंपरा का तो निर्वहन नहीं कर सकते परंतु शोर के पीछे पड़ते दिखाई देते हैं। इस ए. सी. परंपरा के दूरगामी दुष्परिणामों पर भी विद्वानों को चर्चा करनी चाहिए आखिर ये बालक ही कल के भारत के भविष्य हैं। ऐसे कमज़ोर शरीर और कुंठित मानसिकता से ये कैसे भारत का विकास करेंगे सोचने की बात है। माता-पिता ए. सी. बस में चढ़ाकर ऐसे बाय करते हैं जैसे उनका बालक रण जीतने जा रहा हो। एक वह समय था जब माता-पिता अपने बालक को घर से धकेल कर स्कूल भेजा करते थे। शाम को बालक के घर आने पर माता-पिता को होश आता है कि बालक स्कूल गया हुआ था।

उस समय के बालकों ने कम से कम थुलथुला शरीर और आँखों पर नज़र का चश्मा नहीं चढ़वाया। छोटी-मोटी चोटें सहने की शक्ति उनमें थी। बच्चे खेल कूदकर अपना वास्तविक जीवन जीते थे और आपस में खूब बातें करते थे। लंच जल्दी-जल्दी समाप्त कर खेलते थे लेकिन आजकल लंच भी इतना सभ्य हो गया है कि बच्चों के पास खेलने का समय ही नहीं है। या यूँ कहें कि विद्यालय प्रबंधन मनमाफ़िक खेलने की अनुमति नहीं देता। बालकों पर सैकड़ों बंदिशें लागू कर दी जाती हैं।

इस नई प्रबंध व्यवस्था में सिर्फ़ दिखावे के अलावा कुछ खास नज़र नहीं आता। छोटी कक्षाओं में, विशेषकर आठवीं कक्षा तक बच्चों द्वारा किए गए कार्य को शिक्षक अगर उसी कालांश में जाँचते हैं तो बालकों को अधिक लाभ होगा। कक्षा के कुछ बेहद कमज़ोर छात्रों की कॉपियों की जाँच समय रहते हो जाए जो ज़्यादा फायदेमंद हो सकता है। शिक्षक कक्षा के होशियार छात्रों को कक्षा के ही कुछ कमज़ोर छात्रों को समझाने के लिए उनके पास भेज सकता है। छात्र अपने साथियों की बात आसानी से समझ लेते हैं। इससे उनके सिद्धांत स्पष्ट हो जाएँगे। कक्षा के होशियार बालक अपने-आपको कक्षा का ज़िम्मेदार बालक समझेंगे। वहीं कमज़ोर छात्रों से उनकी आत्मीयता बढ़ेगी। इससे उनके सिद्धांत स्पष्ट हो जाएँगे। इस तरह से अध्यापक का काम भी आसान हो जाता है। परंतु इस प्रक्रिया में शोर की गुंजाइश भी बनी रहेगी। विद्यालय प्रबंधन इस व्यवस्था को बुरा कह सकता है लेकिन बालकों के लिए यह व्यवस्था लाभप्रद होगी।

आजकल प्राचार्यों की ओर से स्पष्ट निर्देश हैं कि कक्षा-कक्षों में कॉपियों की जाँच नहीं होगी। अध्यापक अपने कालांश में पढ़ाएँगे। खाली कालांश में कॉपियों की जाँच की जाए। अध्यापक इसका पालन करते हुए ऐसा कर भी रहे हैं। छात्रों के दृष्टिकोण से देखें तो इसका परिणाम संतोषजनक नहीं है भले ही अनुशासन की दृष्टि से सही दिखाई पड़ता हो। जब अध्यापक खाली कालांश में कॉपियों की जाँच करते हैं जो चाहकर भी गलतियाँ नहीं बता सकते। इस प्रक्रिया में सबसे ज्यादा हानि उन बच्चों को होगी जिनके माता-पिता कम पढ़े–लिखे हैं। सरकारी विद्यालयों में तो ऐसे बहुत छात्र मिल जाएँगे जिनके बस्ते केवल विद्यालय में ही खुलते हैं। घर तो सिर्फ खाने-पीने, खेलने, टीवी देखने के लिए है। वहीं सरकारी हो या निजी शिक्षक के पास भी इतना समय नहीं रहता कि वह बुला-बुलाकर छात्रों के पीछे का काम जाँचें। पीछे का काम न जाँचने का कारण भी वही है विद्यालय प्रशासन चाहता है कालांश में बस पढ़ाया जाए। अगर नहीं पढ़ाया गया तो इसका मतलब है कि शिक्षक तैयारी के साथ कक्षा में नहीं आया।

बहुत बार ऐसा भी होता है कि पूर्व में की गई तैयारी को कक्षा में बदलना पड़ता है। शिक्षक द्वारा एकांत में जाँची गई पुस्तिका का कोई विशेष लाभ नहीं है। इस नई शिक्षा व्यवस्था में पुरानी शिक्षण पद्धति का समावेश करना पड़ेगा। पुरानी शिक्षण व्यवस्था में शिक्षक कक्षा के कमज़ोर छात्रों पर बराबर निगाह रखते थे। कालांश में कराए गए काम की जाँच कालांश में ही होती थी। होशियार बच्चों को कमज़ोर छात्रों के साथ समय-समय पर बिठाया जाता था। कमज़ोर छात्रों को शिक्षक अपने पास बुलाकर भी समझाते थे। अधिकतर गलतियों को तत्काल ही दूर कर दिया जाता था। छात्र विषय को अच्छी तरह से समझ सकते थे। इस तरह की शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में कक्षा से थोड़ा-बहुत शोर आता ही था। आजकल का आधुनिक अभिभावक इस तरह की शिक्षण प्रक्रिया को सिरे से नकार सकता है क्योंकि ऐसे में शिक्षक एक-दो छात्रों से घिरे रहते हैं। इसी दौरान अन्य छात्र अध्यापक द्वारा दिया गया काम कर सकते हैं। हो सकता है कि कुछ बच्चे दिया गया काम न करें, वे आपस में बातें करने लगें। कक्षा से बाहर आते शोर को देखकर आजकल के अभिभावक, कुछ निजी और सरकारी विद्यालयों के प्राचार्य इस प्रकार की शिक्षण व्यवस्था को कमज़ोर शिक्षण व्यवस्था कहें। परंतु वे इस बात को भूल जाते हैं कि विद्यालय से शोर का नाता तो ऐसा है जैसे रेल की दो पटरियाँ जो हमेशा साथ चलती हैं। यह तो मानना ही पड़ेगा कि बच्चे तनाव मुक्त वातावरण में ज़्यादा सीखते हैं, अच्छा सीखते हैं।